RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452 Raaso
Refreed Journal

रासो

अन्तर्विषयी त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18, अंक-1, दिसम्बर 2024 जनवरी फरवरी 2025

रासो
त्रैमासिक शोध पत्रिका
2005
॥ स्वस्ति पन्थामनु चरेम ॥

RNI No. RAJHIN/2007/26996
ISSN 0976-7452Raaso
Refreed Journal

रासो

इतिहास, संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन की त्रैमासिक शोध पत्रिका

वर्ष-18 | अंक - 1 | दिसम्बर-2024, जनवरी-फरवरी-2025

सम्पादक
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

निदेशक
कॉम्पिटिशन प्लस संस्थान, ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन्स, अजमेर (राजस्थान)

संरक्षक

* **प्रो. जे. पी. शर्मा** – पूर्व कुलपति, मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

सलाहकार मण्डल

* **प्रो. विभा उपाध्याय** – प्रोफेसर, इतिहास एवं भारतीय संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
* **नर्मदा प्रसाद उपाध्याय** – प्रसिद्ध साहित्यकार तथा संस्कृति चिंतक, इन्दौर (मध्य प्रदेश)
* **प्रो. टी.के. माथुर** – पूर्व अध्यक्ष, इतिहास विभाग महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्वविद्यालय, अजमेर (राज.)
* **डॉ. रमेश अग्रवाल** – पूर्व स्थानीय सम्पादक, दैनिक भास्कर, अजमेर (राजस्थान)
* **डॉ. गौरव बिस्सा** – सहआचार्य, विभागाध्यक्ष, प्रबंध अध्ययन विभाग, राजकीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, बीकानेर (राज.)
* **डॉ. बीना शर्मा** – पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सावित्री कन्या महाविद्यालय, अजमेर
* **प्रो. शोभा आर. मिश्रा** – आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, माधव महाविद्यालय, उज्जैन
* **डॉ. वेद प्रकाश विद्यार्थी** – पूर्व सहायक निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली।

☆ उप सम्पादक
डॉ. रीता पारीक
प्राचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ प्रबन्ध सम्पादक
डॉ. मृत्युंजय शर्मा
सह-आचार्य
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

☆ सहायक सम्पादक
डॉ. निष्काम शर्मा

☆ शब्द संयोजन
मुकेश कुमार माहेश्वरी

☆ सम्पादकीय/सचिव
व्यवस्थापकीय कार्यालय
सृजन संस्थान,
आचमन, वेद विहार,
लोहाखान, अजमेर-06
दूरभाष : 0145-2426610
e-mail : rasoajmjournal@gmail.com

☆ प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
सृजन संस्थान,
द्वारा आचमन पब्लिकेशन्स,
अजमेर

☆ मुद्रक :
मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स,
केसरगंज, अजमेर

☆ कम्प्यूटराइज्ड सेटिंग :
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स
132, पंचवटी कॉलोनी,
अजमेर दूरभाष : 0145-2442701

सहयोग दर

* वार्षिक सदस्यता - 500 रु. (चार अंक) संस्थाओं हेतु - 600 रु. (चार अंक)
कृपया चैक/ड्राफ्ट/मनीऑर्डर श्रीमती पुष्पा शर्मा, प्रकाशक, आचमन पब्लिकेशन्स, अजमेर- 305006 के नाम भेजें।

प्रकाशक-श्रीमती पुष्पा शर्मा, 51/1509, वेद विहार, लोहाखान, अजमेर द्वारा मैसर्स सृजन संस्थान, अजमेर की ओर से प्रकाशित एवं मुद्रक-श्रीमती उषा गर्ग द्वारा मैसर्स आर्य प्रिन्टर्स, केसरगंज, अजमेर से मुद्रित।

डॉ. विद्यानिवास के निबन्धों में संस्कृति के विभिन्न पक्षों की विवेचना

रामस्वरूप गढ़वाल

सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)

हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में भारतीय संस्कृति का जो रूप उभरकर आता है, वह अत्यंत व्यापक, गहन और जीवन-स्पर्शी है। वे संस्कृति को किसी एक आयाम, एक युग या एक ऐतिहासिक खण्ड में सीमित नहीं मानते। उनके अनुसार भारतीय संस्कृति एक अखण्ड प्रवाह है, जो सदियों से अनुभव, आचरण, लोकपरम्परा, शास्त्र, दर्शन और साधना के माध्यम से निरन्तर रूप से विकसित होती रही है। वे यह विचार स्थापित करते हैं कि भारत की सांस्कृतिक चेतना को पश्चिमी ढंग से इतिहास-खंडों में बाँटकर समझना संभव ही नहीं है, क्योंकि हमारा सांस्कृतिक विकास रैखिक नहीं, बल्कि परम्परा-समन्वय-संस्कार की प्रक्रिया से होकर गुजरता है।

डॉ. मिश्र यह मानते हैं कि भारतीय संस्कृति की जड़ें घर-परिवार, लोकजीवन, लोकमान्यताओं और शास्त्रीय वाङ्मय में अत्यन्त गहराई तक फैली हैं। स्वयं उनका बचपन संस्कृत, लोकसाहित्य और विद्वानों के परिवेश में बीता, इसलिए उनके निबन्धों में भारतीय परम्परा की आत्मा स्वाभाविक रूप से धड़कती है। वे यह भी कहते हैं कि हमारी संस्कृति वैदिक, पौराणिक, बौद्ध, जैन, आर्य, द्रविड़ या हिन्दू-मुस्लिम-ईसाई जैसी अनेक धाराओं से निर्मित अवश्य है, पर इन धारणाओं को अलग-अलग रखकर नहीं, बल्कि उनके समन्वित रूप को समझकर ही भारतीय संस्कृति का असली स्वरूप पहचाना जा सकता है।

उनकी दृष्टि में भारतीय संस्कृति की विशेषता यह है कि यह 'संकर' नहीं, 'संस्कार' उत्पन्न करती है। संकर केवल जोड़ होता है, जबकि संस्कार एक नया, जीवंत और समन्वित रूप गढ़ता है। यही कारण है कि भारत की विविध सांस्कृतिक धाराएँ मिलकर एक तीसरा, अधिक विकसित और अधिक व्यापक सांस्कृतिक रूप रचती हैं। इससे संस्कृति में लचीलापन, ग्रहणशीलता और आत्मसात करने की अद्भुत शक्ति पैदा होती है।

पश्चिमी आलोचक जब यह आरोप लगाते हैं कि भारत में ऐतिहासिकता का स्पष्ट बोध नहीं है, तो डॉ. मिश्र इसका उत्तर देते हैं कि भारत ने इतिहास को घटनाओं के क्रम के रूप में नहीं, बल्कि जीवन-मूल्यों और अनुभवों के रूप में देखा है। यहाँ भोजन, व्रत, आचार, उत्सव, संगीत, भाषा, साहित्य—सबमें आध्यात्मिकता की झलक इसलिए है क्योंकि यहाँ संस्कृति का आधार ही आध्यात्मिक चेतना है, जिसमें भौतिक और अध्यात्म अलग नहीं, बल्कि एक-दूसरे के पूरक हैं।

शोध-पत्र में उल्लिखित सन्दर्भ एवं विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबन्ध संस्कृति के इन अनेक पक्षों—लोक और शास्त्र, परम्परा और आधुनिकता, धर्म और दर्शन, भाषा और साहित्य, आचार और विचार—सभी को एक जीवित इकाई के रूप में प्रस्तुत करते हैं। उनके निबन्धों का सार यह है कि भारतीय संस्कृति सदियों की संयुक्त साधना से बनी एक व्यापक, बहुस्तरीय और अखण्ड धारा है, जिसमें विविधता होते हुए भी एक महान आन्तरिक एकता विद्यमान है। यही एकता इसे विश्व की अनोखी और स्थायी संस्कृति बनाती है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों की मूल चेतना संस्कृति है, और इसी कारण उनकी सम्पूर्ण निबन्ध-यात्रा भारतीय सांस्कृतिक दर्शन के विविध आयामों को केंद्र में रखती है। वे स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि वे प्राचीनता का सम्मान अवश्य करते हैं, पर उसके प्रति मोहग्रस्त नहीं। वे किसी अंध-पुरातनवाद के समर्थक नहीं, बल्कि ऐसे विचारक हैं जो परम्परा को जीवित, गतिशील और समकालीन संदर्भों में सार्थक बनाकर देखते हैं। इसलिए वे अपने को किसी संकीर्ण भारतीय चिन्तक की सीमित परिधि में नहीं बाँधते; उनकी दृष्टि में सांस्कृतिक मूल्य सार्वभौमिक हैं, समयातीत हैं, और आगामी विश्व-चेतना के भी अंग हैं।

उनके निबन्धों में संस्कृति केवल बाहरी रूपों, रीति-प्रथाओं या ऐतिहासिक घटनाओं की चर्चा नहीं, बल्कि मनुष्य की आंतरिक संवेदना और नैतिक चेतना से निर्मित एक व्यापक अनुभूति बनकर उभरती है। इसी कारण उनके लेखन में श्रद्धा, सत्य, क्षमा, अक्रोध, त्याग, करुणा, स्वदेश-प्रेम, सौन्दर्यबोध, गुरु-शिष्य परम्परा, जीवन-मृत्यु के दार्शनिक आयाम—ये सब न केवल विषय के रूप में उपस्थित होते हैं, बल्कि मनुष्य की सांस्कृतिक यात्रा के अनिवार्य प्रेरक तत्त्व भी बन जाते हैं।

डॉ. नलिन के मत में भारतीय संस्कृति की आधारशिला *सत्य का अनुसंधान* है, और डॉ. मिश्र की लेखनी इस सत्य-शोध की परम्परा को निबन्धों में जीवंत करती है। इस सत्य की खोज में जीवन-जगत का संपूर्ण आयाम समाहित हो जाता है—आत्मा और परमात्मा का रहस्य, धर्म और साधना का अनुशासन, कला और साहित्य की संवेदना, समाज और राजनीति की नैतिकता, और इन सबका समय-चेतना से साक्षात्कार। इसी व्यापकता के कारण उनके निबन्ध केवल साहित्यिक रचनाएँ नहीं, बल्कि भारतीय चिन्तनधारा के पुनर्पाठ और पुनर्परिभाषा का प्रयास भी हैं।

उनकी विवेचना का यह रूप विशेषत: उन निबन्धों में प्रकट होता है जो मानव-जीवन की सांस्कृतिक संवेदना और सामाजिक अनुभूति को उजागर करते हैं—'बंजारा मन', 'अंगद की नियति', 'तुम चन्दन हम पानी', 'बसन्त आ गया फिर भी कोई उत्कण्ठा नहीं', 'संचारिणी', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'गुरु-शिष्य', 'अयोध्या उदास लगती है' आदि। इन सभी में संस्कृति किसी एक सूत्र में बंधी नहीं दिखाई देती; वह अनेक दिशाओं में फैलकर मनुष्य के सामूहिक और व्यक्तिगत अनुभवों से जुड़ती है।

उनकी दृष्टि में संस्कृति का मूल आधार उन नैतिक मूल्यों में है जो भारतीय जीवन को दीप्त करते हैं—सत्य, दया, करुणा और क्षमा। बिदुला के प्रसंग में दिया गया उनका वचन इस सांस्कृतिक दृष्टि का सार है कि भारतीय जीवन की ज्योति इन गुणों के संयोग से ही प्रकाशमान हुई है। यह केवल सामाजिक उपदेश नहीं, बल्कि भारतीय मन की आत्मा का दार्शनिक उद्घोष है, जिसे डॉ. मिश्र अपने निबन्धों में गहरी संवेदना और सादगी से व्यक्त करते हैं।

प्रो. देशवाल द्वारा प्रस्तुत यह मत कि कुछ निबंधों—जैसे 'परम्परा बंधन नहीं', 'कंटीले तारों के

आर-पार', 'तुम चन्दन हम पानी', 'मैंने सिल पहुँचाई', 'तमाल के झरोखे से', 'अस्मिता के लिए'—में डॉ. विद्यानिवास मिश्र अपने पाण्डित्य के विस्तार में इतने रम जाते हैं कि निबंध का स्वाभाविक प्रवाह कुछ शिथिल दिखाई देता है, उनके निबन्ध-साहित्य पर की गई एक महत्वपूर्ण टिप्पणी मानी जाती है। यह सत्य है कि डॉ. मिश्र का ज्ञान-विस्तार और सांस्कृतिक गहनता कभी-कभी इतना उभर आती है कि रचना का 'प्रबंधन' या शिल्प-संतुलन क्षण भर के लिए कमजोर पड़ता दिखाई देता है, परंतु यह भी उतना ही सत्य है कि यही पाण्डित्य, यही विद्वत्ता, उनकी लेखनी का विशिष्ट रंग है, जिसे हटाकर उनकी सांस्कृतिक दृष्टि को देखा ही नहीं जा सकता।

'लागै रंग हरि श्याम रसायन' में प्रस्तुत तुलसी, रहीम, जयदेव और विद्यापति पर आधारित व्याख्यान उनकी सांस्कृतिक साधना के उत्तम उदाहरण हैं। इन व्याख्यानों में डॉ. मिश्र की वही आत्मीय स्वर-लय, वैचारिक गंभीरता, अनुभव की परिपक्वता और भाषा की कोमल, प्रवाहित ध्वनि गूँजती है, जो उनके श्रेष्ठ निबन्धों की पहचान है। इसलिए यह संग्रह केवल भाषणों का संचयन नहीं, बल्कि व्यक्तित्व और संस्कृति के संवाद का एक जीवंत दस्तावेज बन जाता है। इसमें उनका आलोचक नहीं, साधक रूप अधिक मुखर होता है, जो परम्परा से संवाद करता है और उसे आधुनिक संवेदना में रूपान्तरित कर देता है।

'शेफाली झर रही है' संग्रह में भारतीय संस्कृति का मर्म विशेष रूप से प्रकाशित होता है। यहाँ भारतीय दृष्टि की वह विशेषता उभरती है जो सृष्टि के प्रत्येक कण में चेतना की संभावना देखती है। इसी संग्रह के पहले निबंध में हिन्दी भाषा की उपेक्षा पर उनका गहन आक्रोश प्रकट होता है, जो भाषा को संस्कृति की आधार-शिला मानने वाले लेखक के अंतर्मन की पीड़ा को उजागर करता है। *जेल में बरसात* भवानी प्रसाद मिश्र के प्रति श्रद्धांजलि है, जिसमें भावनात्मकता और विनम्रता दोनों बराबर उपस्थित हैं। 'ब्रज में ब्रजन' यात्रा-संस्मरण है, परन्तु इसमें यात्रा केवल भौगोलिक नहीं, सांस्कृतिक संवेदना की यात्रा बन जाती है।

'उनके मनाये न मानूंगी' में प्रकृति और पुरुष के सनातन संवाद का अत्यंत सूक्ष्म और सजीव चित्र उभरता है। 'सीप और चाँदी', 'हरिरिह विहरत' जैसे निबन्धों में डॉ. मिश्र की ललित निबन्ध शैली अपनी पूर्ण चमक में दिखाई देती है—भाषा का मृदुल सौन्दर्य, अनुभूति की स्वाभाविकता और वर्णन की कोमल लय पाठक को सहज ही बांध लेती है।

उसी तरह 'भारतीयता की पहचान' में उन्होंने भारतीयता के स्वरूप की मीमांसा न केवल दार्शनिक रूप से की, बल्कि अपने जीवन के पाँच उदाहरणों के माध्यम से उसे अनुभवजन्य धरातल पर भी उतारा। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीयता केवल भौगोलिक या जातीय पहचान नहीं, बल्कि एक नैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि है—जिसमें विनम्रता, सह-अस्तित्व, समभाव, सहनशीलता और मानवीयता का आंतरिक भाव बसता है। उनकी कथात्मक शैली का इसमें अत्यंत स्वाभाविक और प्रभावी प्रयोग हुआ है, जिससे निबंध विचार से अधिक अनुभव बन जाता है।

डॉ. मिश्र ने भारतीय संस्कृति के आराध्य स्वरूप का विवेचन केवल वैचारिक अर्थ-गौरव के आधार पर नहीं किया, बल्कि उसमें भक्ति-भाव, आत्मीयता और संस्कार-चेतना का भी समन्वय है। इस प्रकार वे संस्कृति को केवल बौद्धिक विमर्श नहीं, बल्कि हृदय की साधना और जीवन-मूल्यों की अनुभूति के रूप में देखते हैं।

पं. विद्यानिवास मिश्र के सांस्कृतिक निबन्धों में जिन आराध्यों की उपस्थिति सबसे अधिक जीवंत, व्यापक और बहुआयामी रूप में दिखाई देती है, उनमें राम, कृष्ण, शिव-शक्ति, बुद्ध, हिमालय, गंगा, भारतमाता और ब्रज-संस्कार विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। ये सभी आराध्य केवल धार्मिक प्रतीक नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति के मूल भाव-तत्वों, जीवन-मूल्यों और आध्यात्मिक चेतना के प्रतिनिधि रूप में उनके निबंधों में साकार होते हैं।

डॉ. जयनाथ 'नलिन' के शब्दों में– 'शिव और शक्ति, राम और सीता, राधा और कृष्ण हमारे आराध्य हैं।' इसी भावधारा का विस्तार डॉ. मिश्र के पूरे निबन्ध-साहित्य में दिखाई देता है, जहाँ शिव कलाओं और ज्ञान-विज्ञान के शाश्वत स्रोत हैं, राम मर्यादा और आदर्श के प्रतीक, और कृष्ण सृष्टि-चेतना, प्रेम, लीला और सौन्दर्य के आधार-स्तम्भ।

उनके निबंध-संग्रह चितवन की छाँव से लेकर शेफाली झर रही है, अस्ति की पुकार-हिमालय, तमाल के झरोखे से, संचारिणी, तुम चन्दन हम पानी और बसन्त आ गया फिर भी कोई उत्कंठा नहीं जैसे अनेक संग्रहों में ये आराध्य विविध संदर्भों में उभरते हैं। कहीं राम कथा जीवन-मूल्यों का मार्गदर्शक बनती है, कहीं शिव की ताण्डव-चेतना शक्ति और सृजन का रूप ले लेती है, कहीं कृष्ण का मुरलीमय सौन्दर्य प्रेम और करुणा का विस्तार बनकर आता है, तो कहीं गंगा और हिमालय भारतीय आत्मा की पवित्रता और दृढ़ता का प्रतिमान बन जाते हैं।

डॉ. मिश्र इन आराध्यों को केवल पुराण, आख्यान या धर्मग्रंथों की सीमा में नहीं रखते, बल्कि आधुनिक जीवन की जटिलताओं, सांस्कृतिक बदलावों और राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ में उनकी व्याख्या करते हैं। इसलिए माटी के महादेव, मैं देख्यौं जसुदा के नन्दन, ब्रज में मनुष्य ईश्वर नहीं, ईश्वर मनुष्य है, राम कथा मेरे लिए, अयोध्या उदास लगती है, जननी जन्मभूमिश्च जैसे निबंधों में परम्परा और आधुनिकता एक-दूसरे में घुलकर एक नया, अर्थपूर्ण सांस्कृतिक रूप निर्मित करते हैं।

इसी प्रकार हिमालय के प्रति उनका आकर्षण अत्यंत गहरा है। हिमालय उनके लिए केवल पर्वतमाला नहीं, बल्कि भारतीय आत्मा का 'मानदण्ड' है—पवित्रता, कठोरता, धैर्य, तपस्या और अडिग शक्ति का प्रतीक। इसलिए वे कालिदास की प्रसिद्ध उक्ति–

'अस्ति उत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः।

पूर्वापरौ तोयतिधि वगाह्य स्थितः पृथिव्यां इव मानदण्डः।।'

को बार-बार स्मरण करते हैं। उनके निबंधों में हिमालय देवत्व और नैतिक ऊँचाई का वह शिखर है, जिसके माध्यम से भारतीय संस्कृति की परिशुद्धता, आत्मगौरव और आध्यात्मिक व्यापकता व्यक्त होती है।

गंगा उनके लिए करुणा, पवित्रता और जीवन की सतत धारा का चिन्ह है। राम और कृष्ण भारतीय मन की मर्यादा और मनोवृत्ति के दो आधार हैं। शिव-शक्ति सृजन, विनाश, ऊर्जा और कला के शाश्वत स्रोत हैं। बुद्ध करुणा, विवेक और मध्यम मार्ग के प्रतिनिधि हैं। भारत और ब्रज उनके लिए केवल भूगोल नहीं, बल्कि सांस्कृतिक अनुभव और आत्मीयता के प्रतीक स्थल हैं।

इन सभी आराध्यों की चर्चा करते समय डॉ. मिश्र किसी धार्मिक आग्रह से प्रेरित नहीं होते; उनका उद्देश्य इन आराध्यों के माध्यम से भारतीय जीवन-दृष्टि की निरन्तरता, मानवीयता, आत्मगौरव, संवेदना

और आध्यात्मिकता को उजागर करना है। इसी कारण उनका सांस्कृतिक निबन्ध-साहित्य आधुनिक चेतना और परम्परा के बीच एक सजीव सेतु बन जाता है।

भारतीय परम्परा में हिमालय को 'देवात्मा' कहा गया है और गीता में वह भगवान वासुदेव का स्थावर-विग्रह माना गया है। शिव के आराध्य रूप में वह वह केन्द्र है जहाँ समस्त विद्याएँ, शक्तियाँ, सिद्धियाँ और मातृशक्तियाँ एकत्र होती हैं। भारतीय संस्कृति में शिव-नमन केवल धार्मिक कृत्य नहीं, बल्कि जीवन को विनम्रता और पवित्रता से जोड़ने का सांस्कृतिक विधान है।

इसी भावभूमि में मांगलिक प्रतीकों की व्यापक परम्परा विकसित हुई है, जिसका मार्मिक चित्रण डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने किया है। तिलक, सिंदूर, सूत्र, स्वस्तिक, दीपक, रोली, हल्दी, दूर्वा, दही, अक्षत, भरा कलश—ये सभी प्रतीक केवल अनुष्ठान नहीं, बल्कि हमारी धरती, समृद्धि, पोषण, इतिहास और लोक-जीवन की जीवित व्याख्याएँ हैं। मिश्र जी के अनुसार हल्दी-दूध, दूर्वा और दधि-अक्षत भारतीय घरों की संस्कृति के मूर्त आधार हैं। दूर्वा तितिक्षा का प्रतीक है और हल्दी उसके अग्रभाग पर सौभाग्य का संस्पर्श देती है। कमल सुगन्ध देता है, पर दही और अक्षत जीवन में रस, शब्द और स्पन्दन जोड़ते हैं। दही इस संस्कृति की रसमयी, संतुलित और समरस वाणी का साक्षात प्रतीक है।

श्रीनारायण चतुर्वेदी ने विद्यानिवास मिश्र के निबंधों को भारत की आत्मा का दर्पण कहा है—दर्पण जो यथार्थ को उसी रूप में दिखाता है। उनके निबंधों में पीड़ा, व्यंग्य, प्रेरणा और आत्ममंथन का सजीव मिश्रण मिलता है। 'बेचिरागी गाँव' में वे प्रत्यक्ष उपदेश देते हैं, जबकि 'वसंत' के बहाने आधुनिक सामाजिक विडम्बनाओं का गहन व्यंग्य करते हैं। वे बताते हैं कि आज वसंत सत्ता का वसंत बन गया है—अभिनन्दनों, कृत्रिम उत्सवों और खोखले 'टेसू' में डूबा हुआ। जिस वसंत में मिटने की भाव-तत्त्व न होकर केवल क्षरण की विवशता हो, उसे न्यौतने का साहस किसके पास है?

'तमाल के झरोखे से' में उन्होंने संस्कृति के अनेक आयामों—प्रकृति, लोकजीवन, आंचलिकता, धर्म, मूल्य और मानवीय संवेदना—का विस्तार से विश्लेषण किया है। यह संग्रह दर्पण ही नहीं, दीपक भी है, जिसके प्रकाश में घर, गाँव, राष्ट्र और संस्कार उजागर होते हैं। भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी श्रद्धा बाह्य आडम्बरों से मुक्त है; उनकी दृष्टि में धर्म समरसता, प्रेम और अहंकार-विसर्जन का मार्ग है। वे उपनिषद् के 'चरैवेति-चरैवेति' को मानवता का शाश्वत सत्य मानते हैं। रामायण और महाभारत को वे संस्कृति के भाष्य-ग्रंथ बताते हुए कहते हैं कि सच्चाई की कसौटी है—दूसरों के दुख की चिंता, और चिंता की कसौटी है—प्यार, जो पर को अपना बना लेता है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र भारतीय संस्कृति में राष्ट्रप्रेम को इसलिए विशेष महत्व देते हैं कि भारत केवल 'देश' नहीं, 'मातृभूमि' है। जननी और जन्मभूमि स्वर्ग से बढ़कर मानी गई है। इसी सत्य का मर्म कराची के एक बुज़ुर्ग पाकिस्तानी ने, जो आज़ादी से पहले बनारस में रहता था, नम आँखों से मिश्र जी के सामने उद्घाटित किया— 'मुल्क बदल जाये तो बदल जाये, पर वतन तो वतन होता है; गंगा और उसके कछार को मेरा सलाम कहना।' इस आत्मीयता की तुलना में मिश्र जी को यह देखकर पीड़ा होती है कि अमेरिका में बस गए कुछ भारतीय अपनी मातृभूमि की निंदा करते हुए भारत को सांप-बिच्छू और धूल-गुबार का देश बताते हैं, जबकि अमेरिका को स्वर्ग मानते हैं। वे भूल जाते हैं कि अमेरिका उपभोक्ता-सभ्यता का केंद्र है—वह संस्कृति जो मनुष्य और मनुष्य के बीच अदृश्य दीवारें खड़ी करती है, जहाँ जीवन 'खरीदो-खरीदो' के

पागलपन में रमा है। यदि यही स्वर्ग है तो फिर नरक कहाँ रहेगा? इन अनुभूतियों के माध्यम से मिश्र जी राष्ट्रभावना, सांस्कृतिक महानता और लोकजीवन की शक्ति को अपने निबंधों में प्रभावी ढंग से स्थापित करते हैं।

चंदन और तिलक के संदर्भ में भी उनकी दृष्टि विशुद्ध भारतीय होते हुए भी व्यापक विश्व-दृष्टि से ओतप्रोत है। उनका कहना है कि चंदन किसी भी रूप में हो, वह हमारी विश्व-कल्याण कामना का सूक्ष्म परंतु सारगर्भित प्रतीक है, जिसे अर्थपूर्ण और 'रससिद्ध' करना हमारा दायित्व है। तिलक भी तभी सार्थक है जब वह अर्पित चंदन का तिलक हो—स्वार्थ, संकुचित पहचान या निजी दंभ का नहीं, बल्कि उस विश्व-सुरक्षा और लोकमंगल की भावना का जो भारतीय परंपरा का वास्तविक आधार है। इसी दृष्टि से वे कहते हैं—हम ही चंदन हैं, हम ही पानी; हमारी संस्कृति, हमारा आचरण और हमारा प्रेम ही इन प्रतीकों को अर्थ देते हैं।

पं. विद्यानिवास मिश्र के भारत-विषयक विचार अत्यंत गहन, सांस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित और दार्शनिक विस्तार लिए हुए हैं। उनके अनुसार भारत कोई भौगोलिक सीमा में बँधा हुआ प्रदेश नहीं, बल्कि एक ऐसी सांस्कृतिक कल्पना है जिसकी जड़ें पुराणों, वेदों और मानवमानस की आदिम स्मृति में रची-बसी हैं। जब वे पुराणों में उल्लिखित भारत की परिकल्पना को याद करते हैं, तो उन्हें बार-बार यही अनुभव होता है कि भारत की कोई सीमाएँ नहीं थीं—वह अनेक द्वीपों में फैले जम्बूद्वीप का एक विराट और बहुआयामी प्रदेश था।

वैदिक वाङ्मय में 'भारत' शब्द की व्युत्पत्ति उन्हें विशेष रूप से आकर्षित करती है। यहाँ 'भारत' केवल 'भरत' वंश का द्योतक नहीं, बल्कि 'अग्नि-उपासक' का प्रतीक है—अग्नि अर्थात वह ऊर्जा जो सभी का संरक्षण करती है, सबको ताप, प्रकाश, प्रेरणा और जीवन देती है। 'भारत' वही है जो इस ऊर्जा का उपासक हो; जो सबके संरक्षण और सर्वकल्याण की भावना में विश्वास रखे। इसलिए भारतीय चिंतकों ने कभी 'बहुत्व'—अपने तक सीमित हित—की चिंता नहीं की, बल्कि 'सर्व' की चिंता की। भारतीयता का मूल स्वभाव ही इसी व्यापकता, इसी संरक्षण और इसी एकात्मता में निहित है।

यही कारण है कि पं. मिश्र केवल भारत, भारतीयता और भारतीय संस्कृति के गौरव का वर्णन ही नहीं करते, बल्कि उसके संरक्षण और पुनर्जागरण की गहरी चिंता भी व्यक्त करते हैं। निबंध के अंत में उनका स्वर चेतावनी बनकर उठता है—यह चेतावनी देशवासियों को भीतर से जगाने के लिए है। वे कहते हैं कि भारतीयता कोई चोगा नहीं कि मन हुआ तो पहना, मन हुआ तो उतार दिया; भारतीयता तो भीतर का दर्द है—वह बेचैनी, वह संवेदना, वह आत्मबोध, जो मनुष्य को मनुष्य बनाती है। उसे दवाइयों की तरह दबाया नहीं जा सकता, न ही भूलाया जा सकता है। शासक भले ही भ्रम फैलाएँ, परिस्थितियाँ भले ही मन को सुन्न करें, लेकिन वह सांस्कृतिक पीड़ा, वह सभ्यता-बोध मनुष्य को जागृत करता है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबंध मूलत: ललित निबंध की उस परंपरा के प्रतिनिधि हैं, जिसमें अनुभूति की स्वच्छंदता, भाषा की लयात्मकता और शैली की सांस्कृतिक आभा प्रमुख होती है। उनके संस्कृत-निष्ठ संस्कार उनकी अभिव्यक्ति में एक विशिष्ट गरिमा पैदा करते हैं, जिसका स्वरूप उनके उद्धृत वाक्यों—'ताण्डवं देवि भूयादभीष्ट्यै च हृष्ट्ये च न:' तथा 'चन्द्रमा मानसो जात:' जैसी पंक्तियों—में स्पष्ट दिखाई देता है।

उनकी शैली पर टिप्पणी करते हुए डॉ. कैला भाटिया ने 'चितवन की छाँह' में प्रयुक्त 'शैली' को उस मौलिक सांस्कृतिक पद्धति का आधार बताया है, जिसके माध्यम से लेखक भारतीय सांस्कृतिक चेतना को सहजता से जनमानस तक पहुँचाता है।

'बसन्त आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं' में संकलित उनके बाइस निबंध इसी सांस्कृतिक दृष्टि के विस्तार हैं, जिनमें उन्होंने अपनी सूक्ष्म मेधा से परंपरा, संस्कृति और जीवनानुभूति को नई अर्थवत्ता प्रदान की है। 'बर्फ और धूप' उनका अत्यंत प्रतीकात्मक निबंध है, जिसमें वे बताते हैं कि जैसे बर्फ और धूप एक-दूसरे को चमकने में सहायक लगते हुए भी भीतर से विपरीत शक्तियाँ हैं, वैसे ही वह युवक, जो अपनी संस्कृति से अपरिचित रहता है, दूसरी संस्कृतियों की बाहरी चमक में भटक सकता है। यह भटकाव अंततः निराशा और निषेध में बदल जाता है।

डॉ. मिश्र इस सांस्कृतिक पलायन को रोकने का उपाय 'तितिक्षा' में खोजते हैं—अर्थात् एक संस्कृति में दूसरी संस्कृति के प्रति सहनशीलता, खुलापन और संवाद का भाव होना चाहिए। उनके विचार में संस्कृतियों को प्रतिस्पर्धा या होड़ में खड़ा करना सामाजिक और नैतिक रूप से अनुचित है; सांस्कृतिक सौहार्द ही मनुष्य और समाज दोनों को समृद्ध करता है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने अपने निबंध 'नये मूल्यों की तलाश : धर्म के स्तर पर' में आधुनिक समय के बदलते परिवेश में धर्म और मूल्य—दोनों की पुनर्परिभाषा का प्रयास किया है। वे भारतीय इतिहास और परंपरा की उस निरंतर धारा की ओर संकेत करते हैं, जिसमें धर्म केवल अनुष्ठान नहीं, बल्कि जीवन-मूल्यों की खोज का आधार रहा है। उनके अनुसार भारतीय चिंतन में धर्म का उद्देश्य व्यक्ति को व्यापक मानवता से जोड़ना है, इसलिए वे लिखते हैं कि जीवन का वास्तविक प्रयोजन 'सर्वजीवन' है—अर्थात् ऐसा जीवन जो अपने साथ-साथ संपूर्ण समाज और मानवता के कल्याण की दिशा में चल सके। यह मूल्य जितनी शीघ्र स्थापित हों, उतना समाज के लिए कल्याणकारी है।

डॉ. पर्लिकर के मत में डॉ. मिश्र केवल भारतीय संस्कृति की रक्षा का आग्रह नहीं करते, बल्कि उसे नवजीवन देने, उसकी सर्जनात्मक ऊर्जा को पुनः जाग्रत करने का आह्वान भी करते हैं। उनके निबंध भारतीय और पाश्चात्य—दोनों सांस्कृतिक परंपराओं का परिचय इतने रोचक और सहज ढंग से देते हैं कि पाठक के भीतर सांस्कृतिक समझ का नया आयाम खुलता है।

डॉ. विजयेन्द्र स्नातक, जो हिन्दी के प्रमुख आलोचकों में गिने जाते हैं, डॉ. मिश्र की सांस्कृतिक दृष्टि को दुर्लभ मानते हैं। उनका कहना है कि भारतीय संस्कृति की जैसी सघन पकड़ और सही समझ डॉ. मिश्र में है, वह आज के लेखन में क्षीण होती जा रही है। इसीलिए वे पाठकों से कहते हैं कि मिश्र के निबंधों को पढ़कर हमें अपनी सांस्कृतिक अस्मिता पर गर्व महसूस करना चाहिए और भड़कीली बाहरी नकल की प्रवृत्ति को त्यागने का साहस जुटाना चाहिए।

निष्कर्षतः डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबंध आधुनिक संदर्भ में धर्म, संस्कृति और मानवीय मूल्यों की नई दिशा दिखाते हैं। उनका मानना है कि भारतीय परंपरा सदैव मूल्यों की खोज और सर्वजनहित के जीवन-मूल्य को प्रमुख मानती रही है। वे संस्कृति की केवल रक्षा नहीं, बल्कि उसके नवजीवन और पुनर्जागरण की बात करते हैं। समीक्षकों के अनुसार उनकी सांस्कृतिक समझ अत्यंत गहरी है और आज के लेखन में

दुर्लभ होती जा रही है। कुल मिलाकर उनके निबंध भारतीय अस्मिता, सनातन मूल्यों और वैश्विक मानवता— तीनों के संतुलन का संदेश देते हैं तथा नई पीढ़ी को अपनी सांस्कृतिक जड़ों पर गर्व करने की प्रेरणा प्रदान करते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. *डॉ. सुरेश गुप्ता, श्रेष्ठ हिन्दी निबंधकार*
2. *समीक्षा (पत्रिका), अंक, जुलाई–अगस्त डॉ. हर्ष नारायण नीरव, 1982*
3. *डॉ. विद्यानिवास मिश्र-संचारिणी (संस्कृति और समन्वय)*
4. *वाद्य वृंद, विद्यानिवास मिश्र, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, दिल्ली, 2014*
5. *डॉ. जयनाथ 'नलिन'- हिन्दी निबंध के आलोक शिखर*
6. *वाद्य वृंद विद्यानिवास मिश्र, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, दिल्ली, 2014*
7. *डॉ. विद्यानिवास मिश्र, तुम चन्दन हम पानी*
8. *प्रो. सन्तराम देशवाल -हिन्दी ललित निबंध : स्वरूप एवं मूल्यांकन*
9. *डॉ. जगन्नाथ चौधरी, निबंधकार विद्यानिवास मिश्र, अतुल प्रकाशन, कानपुर*
10. *डॉ. जयनाथ 'नलिन' हिन्दी निबंध के आलोक शिखर*
11. *डॉ. विद्यानिवास मिश्र - बसंत आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं*
12. *डॉ. जयनाथ 'नलिन' - हिन्दी निबंध आलोक शिखर*
13. *डॉ. विद्यानिवास मिश्र - गांव का मन (हल्दी दूध और दधि अक्षत)*
14. *डॉ. विद्यानिवास मिश्र-गांव का मन (तुम चन्दन हम पानी)*
15. *डॉ. विद्यानिवास मिश्र-गांव का मन (तुम चन्दन हम पानी)*
16. *डॉ. मु.ब. शाह, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, समकालीन निबन्धकार से उद्धृत*
17. *डॉ. जगन्नाथ चौधरी, निबन्धकार विद्यानिवास मिश्र*
18. *डॉ. मनोहर सराफ, 'तमाल के सरोखे से - अनुशीलन लेख से उद्धृत*
19. *डॉ. जगन्नाथ चौधरी, निबन्धकार विद्यानिवास मिश्र अतुल प्रकाशन, कानपुर*
20. *डॉ. विद्यानिवास मिश्र- तुम चन्दन हम पानी*
21. *डॉ. विद्यानिवास मिश्र, तमाल के झरोखे से (जननी जन्मभूमि)*
22. *डॉ. विद्यानिवास मिश्र-संचारिणी - (भारतीयता का व्याख्या पुनः पुनः)*
23. *डॉ. कैलाश भाटिया - हिन्दी साहित्य की नवीन विधायें*
24. *डॉ. जगन्नाथ चौधरी, निबंधकार विद्यानिवास मिश्र*
25. *समीक्षा (पत्रिका) विजयवाद - कौन बुलाया बीन बिहारी की समीक्षा, अंक 84, अप्रेल 1982*